देश आजाद होने के उपरांत संविधान सभा ने 26 नवम्बर 1949 को भारत का संविधान अंगीकृत किया और 26 जनवरी 1950 के दिन भारत को एक संप्रमुख सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया। इस घोषणा के अनुरूप पूरे देश को लोसभा एवं विधानसभा चुनावों के लिए प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में बांटा गया और वयस्क मताधिकार आधारित प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा इनका चुनाव सम्पन्न कराने के लिए संविधान के अनुच्छेद-324 के अधीन निर्वाचन आयोग की एवं एक अधीनस्थ विधान के रूप में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम व्यवस्था की गई। संविधान के एक प्रमुख उद्देश्य लोकतंत्रात्मक गणराज्य को मूर्त रूप देने के लिए भारत ने निर्वाचन की जनप्रतिनिधियों के निर्वाचन की बहुदलीय प्रणाली स्वीकार किया जिसके आधार पर राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर राजनीतिक दल संगठित हुए और निर्वाचन आयोग एवं जनप्रतिनिधित्व अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप कार्यरत रहने लगे।

आजादी के पूर्व भी राजनीतिक दल अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के अनुसार सक्रिय थे और गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट-1935 के प्रावधान के अनुसार उस समय भी चुनाव हुए तथा प्रादेशिक सरकारों का गठन इनके द्वारा किया गया था। परंन्तु भारत के गणराज्य घोषित होने के बाद क्रमशः इनकी गतिविधियाँ विधिवत संस्थात्मक रूप लेती गई। गणराज्य के चुनावी अनुभवों और निर्वाचित जनप्रतिनिधियों द्वारा दलीय प्रतिबद्धता की सीमा रेखा लांघ कर प्रदेशों में सरकार बनाने और बिगाड़ने के खेल से उत्पन्न परिस्थिति के फलस्वरूप देश भर में चुनाव कानूनों में व्यापक सुधार की चर्चा शुरु हो गई। 1971-72 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने चुनाव सुधारों के लिए ठोस प्रस्ताव प्रस्तुत किया। तत्कालीन जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष लालकृष्ण आडवाणी ने दुनिया के विभिन्न देशों की चुनाव प्रणालियों का अध्ययन कर 1974 में चुनाव कानूनों में संशोधन के वैकल्पिक सुझाव प्रस्तुत किये। 1972 में गठित भारत की पहली गैर कांग्रेसी केन्द्र सरकार ने चुनाव कानून में सुधार के लिए गोस्वामी समिति गठित किया। 1985 में बिहार के मूर्धन्य नेता स्व. कर्पूरी ठाकुर ने 1985 के बिहार विधानसभा चुनावों में हुई अनियमितता की घटनाओं और 1984 लोकसभा चुनाव के बाद भारत के चुनाव आयोग द्वारा प्रस्तुत विस्तृत विश्लेषणात्मक प्रतिवेदन को आधार बनाकर एक लोकतंत्र बचाओ अभियान आरंभ किया और चुनाव कानूनों में सुधार का सुझाव देने के लिए एक सात सदस्यीय समिति घोषित किया, जिसमें मुझे भी एक सदस्य रखा था। इस समिति ने दलबदल रोकने, राजनीतिक दलों की जिम्मेदार भूमिका चिह्नित करने तथा चुनावों में धांधली और अनियमितता पर अंकुश लगाने के लिए कई सुझाव दिए थे।

1960 के दशक के उतरार्द्ध से 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध तक राजनीतिक दलों के निर्वाचित

Scanned with OKEN Scanner

प्रतिनिधियों ने स्वार्थ एवं लोभ प्रेरित दल बदल के जैसा घिनौना रूप प्रस्तुत किया, उस पर अंकुश लगाने के लिए देश भर से आवाज उठने लगी। हालांकि लोकतांत्रिक पद्धति एवं समाजवादी विचारों के हिमायती कतिपय राजनैतिक विचारकों ने ऐसे किसी वैधानिक उपाय को जनप्रतिनिधियों के लोकतांत्रिक अधिकारों का हनन करने की संज्ञा भी दिया और राजनीतिक दलों के नेतृत्व के निरंकुश होने के खतरा के प्रति सचेत भी किया। ऐसे विचारकों की राय में ऐसे वैधानिक उपाय से राजनीति दलों में आंतरिक लोकतंत्र के स्तर एवं क्षीण होने की संभावना हो सकती है। उनका मानना था कि वयस्क मताधिकार पद्धति से आम जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को राजनीतिक दलों का नेतृत्व की तानाशाही का सामना करना पड़ेगा और संसद एवं विधानसभाओं में उनका जनोमुखी चरित्र प्रभावित होगा। निर्वाचित प्रतिनिधि आमजन की आवाज बनने की बजाय उस राजनीतिक दल की आवाज बनने के लिए विवश हो जायेंगे। वैचारिक स्वतंत्रता की अवधारना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए ऐसे विचारक दलीय प्रतिवद्धता के संबंध में निर्वाचित प्रतिनिधियों के आचरण का स्वविवेक छोड़ देने की हिमायती थे और सही गलत फैसला उन्हें निर्वाचित करने वाली जनता पर छोड़ देना चाहते थे। उनकी नजर में यह मामला राजनीतिक दलों के आंतरिक लोकतंत्र बनाम जनप्रतिनिधियों के लोकतांत्रिक अधिकार एवं वैचारिक स्वतंत्रता का है।

26 नवम्बर 1949 को जब भारत का संविधान देश की जनता को सौंपा गया उस समय संविधान के किसी अनुच्छेद में अथवा किसी अनुसूची में राजनीतिक दल का उल्लेख नहीं था। अब तक भारत के संविधान में सौ से ऊपर संशोधन हो चुके हैं, परंतु संविधान की मूलभावना और लोकतांत्रात्मक गणराज्य के स्वरूप को प्रभावित करने वाले दो संशोधन विशेष उल्लेख योग्य है। इनमें एक संशोधन है भारत के संविधान में 42वां संशोधन। जो 1976 में हुआ और जनवरी 1977 से प्रभावी हुआ। दूसरा है 52वां संशोधन, जो 1985 में हुआ और 1 मार्च 1985 से प्रभावी हुआ। 42वां संशोधन उस समय हुआ जब देश में आपातकाल लगा कर आम लोगों के अनेक लोकतांत्रिक अधिकारों को समाप्त कर दिया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान की मूलभावना के साथ छेड़छाड़ की गई। संविधान निर्माताओं द्वारा भारत के संविधान का एक प्रमुख उद्देश्य रखा गया था भारत को सम्प्रभूता सम्पन्न लोकतांत्रात्मक गणराज्य बनाना। पर वे संशोधन द्वारा लोकतंत्रात्मक शब्द के पहले समाजवादी और पथनिरपेक्ष शब्द जोड़ दिए गए। यह संशोधन आज बेमानी हो गया है क्योंकि भारत ने पिछले डेढ़ दशक से जिस तरह की आर्थिक नीतियों पर चल रहा है उसके मद्देनजर आज समाजवाद का कोई स्थान भारतीय गणराज्य के नीति निर्धारण में नहीं है। राजनीतिक दलों का आंतरिक लोकतंत्र भी इस संविधान संशोधन की प्रासंगिकता के

Scanned with OKEN Scanner

बारे में मुखर नहीं है। हमारे संविधान की तीसरी अनुसूची केन्द्र और राज्य के मंत्रियों, सांसदों, विधायकों और लोकसभा एवं विधानसभा चुनाव में उम्मीदवारों के लिए शपथ का प्रारूप दिया गया है। इन शपथ प्रारूपों की पहली पंक्ति में ही कहा गया है कि-"मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा।" भारत के संविधान के मुख्य उद्देश्यों में समाजवाद और पंथ निरपेक्षता का शामिल रहने का इस शपथ के साथ कोई तालमेल नहीं है। एक और मंत्री और जनप्रतिनिध संविधान के प्रति निष्ठा और निष्ठा की शपथ लेते हैं दूसरी ओर अपने कर्तव्य निर्वाह के दौरान समाजवाद और पंथनिरपेक्षता के विरुद्ध आचरण प्रदर्शित करते हैं। यह एक सम्प्रभुता सम्पन्न लोकतांत्रिक गणराज्य के प्रति क्रूर मजाक है।

1949 में भारत का संविधान अंगीकृत हुआ और 26 जनवरी 1950 को भारत गणराज्य घोषित हुआ। उस समय से 1985 में संविधान का 42वां संशोधन होने तक संविधान की किसी अनुच्छेद का अनुसूची में राजनीतिक दल का उल्लेख नहीं था। जनप्रतिनिधियों के दलबदल विषयक अनैतिक आचरण से उत्पन्न राजकीय अस्थिरता का सामना करने के लिए 52वें में संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के अनुच्छेद-102(2) और 191(2) में व्यापक संशोधन किया गया है और संविधान में 10वीं अनुसूची जोड़ी गई। इस अनुच्छेद के माध्यम से दलबदल करने वाले राजनीतिक दलों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के संसद एवं विधानमंडल की सदस्यता से अयोग्य ठहराने की व्यवस्था है। अपने दल के निर्वाचित प्रतिनिधियों के विरुद्ध राजनीतिक दल द्वारा शिकायत दर्ज करने की व्यवस्था है और राजनीतिक दल में निर्वाचन की प्रक्रिया निर्धारित करने की व्यवस्था है।

संविधान के 52वें संशोधन में राजनीतिक दलों के लिए एक संविधान सम्मत संस्थात्मक ढांचा प्रदान किया है। तद्नुरूप संसद एवं विधानमंडलों द्वारा नियमावली बनाकर तथा निर्वाचित आयोग और जनप्रतिनिधित्व अधिनियम में आवश्यक परविर्तन कर इस संदर्भ में राजनीतिक दलों को अधिक जिम्मेदार भूमिका निभाने की व्यवस्था की गई है। अब न तो जनप्रतिनिधियों को एक सीमा से आगे जाकर दलीय प्रतिबद्धता की छीछालेदर करने की छूट है ना राजनीतिक दलों को ही। इसे राजनीतिक दलों के आंतरिक लोकतंत्र को भी एक संवैधानिक दिशा प्राप्त हुई है। जिस तरह से देश के लोकतंत्रात्मक गणराज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए संविधान में और संविधान के प्रावधानों के अधीन बनाये गये अधिनियमों, नियमों, परनियमों एवं अधिनस्थ विधानों की व्यवस्था है। उसी प्रकार राजनीति दलों के आंतरिक लोकतंत्र को संविधान सम्मत दिशा देने के लिए भी संविधान की 10वीं अनुसूची तथा निर्वाचन आयोग एवं लोकप्रतिनिधित्व अधिनियम में भी व्यस्था की गई है।

Scanned with OKEN Scanner

मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों का भी अपना संविधान है। राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र किस हद तक है, कितना काफी है और कितना नाकाफी है इसका निर्धारण दल विशेष द्वारा अपने लिए निर्धारित किए गए संविधान के प्रावधानों और इनके योग्य कार्यान्वयन पर निर्भर है। किसी भी राजनीतिक दल के नेतृत्व से इस बारे में प्रश्न किया जाएगा तो उत्तर मिलेगा कि दल में आंतरिक लोकतंत्र जीवंत है और यही सवाल दल के भीतर प्रतिस्पर्धी अथवा विक्षुब्ध समूह से किया जायेगा तो उत्तर मिलेगा कि दल में आंतरिक लोकतंत्र के स्थान पर नेतृत्व की तानाशाही व्याप्त है। अधिकांश राजनीतिक दलों में लोकतांत्रिक प्रावधानों और प्रक्रिया केवल दलीय संविधान के पन्नों तक ही सीमित है। अधिक से अधिक इसका उपयोग दल की विभिन्न इकाइयों के गठन के दौरान परिलक्षित होता है।

वास्तव में राजनीतिक दलों के गठन और परिचालन में जिन उद्देश्यों और समस्याओं की प्रमुखता रहती है उनका तालमेल आंतरिक लोकतंत्र प्रावधानों के साथ बिठाना मुश्किल नहीं, नहीं तो काफी कठिन अवश्य है। राजनीतिक दल की सार्थकता और प्रासंगिका इसका मोहताज नहीं है कि दल के संगठन संचालन में आंतरिक लोकतंत्र का कितना ख्याल रखा जा रहा है। बल्कि वह इस पर निर्भर है कि वह दल निर्वाचित प्रतिनिधियों की सरकार और गुणात्मकता के दृष्टिकोण से संसद और विधानमंडलों को कितना प्रभावित कर पा रहा है। दल के संगठन और संसदीय दल की मान्यताओं, प्राथमिकताओं और प्रक्रियाओं में अधिक से अधिक मात्रा में तालमेल बिठा पाने की दलीय नेतृत्व की योग्यता और पहल पर निर्भर करता है कि वह दल के भीतर के लोकतंत्र की भूमिका को कितनी सार्थकता प्रदान कर रहा है। वास्तव में किसी राजनीतिक दल के आंतरिक लोकतंत्र की सार्थकता उस दल के व्यक्तित्व अथवा सामूहिक नेतृत्व की अधिक से अधिक लोगों को साथ लेकर चलने और आमसहमति के बिन्दुओं का अधिकाधिक विस्तार करने की कुशलता पर निर्भर करता है। दल के आंतरिक लोकतंत्र को सम्पुष्ट करने में दल के लिखित संविधान और नियमावली के सैद्धांतिक पहलुओं से अधिक नेतृत्व की दुरदर्शिता और लोक व्यवस्था से स्थापित स्वस्थ परंपराओं की भूमिका होती है। क्योंकि राजनीतिक दल अपने दल की समस्याओं तथा नीतिगत प्राथमिकताओं के प्रति जितना जिम्मेदार होता है उससे कहीं अधिक जिम्मेदार वह आम जनता के प्रति होता है, जो प्रत्यक्ष निर्वाचन के माध्यम से दल के प्रतिनिधियों को चुनकर लोकतंत्रात्मक गणराज्य के सुचारु संचालन के लिए संसद और विधानमंडलों में भेजती है।

-x-

Scanned with OKEN Scanner